पुद्गल और आत्मा का सम्बन्ध

आचार्य अनन्त प्रसाद जैन

व्यवहार और निश्चय दोनों की ही जैन धर्म में बड़ी महत्ता कही गई है। निश्चय तो लक्ष्य है और व्यवहार उस तक पहुंचने का मार्ग। षट्द्रव्य, सप्ततत्व, नवपदार्थ का शास्त्रोक्त ज्ञान तो व्यवहार-सम्यक्-दर्शन या व्यवहार-श्रुत-ज्ञान है। आत्मा (जीव), पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश और काल ये षट्द्रव्य हैं। जीव (आत्मा) क्या है ? पुद्गल क्या है ? तथा दूसरे तत्व क्या हैं ? यह सब गुरुओं या ज्ञानियों के उपदेश या स्वयं शास्त्रों के अध्ययन से जान लेना ही व्यवहार-सम्यक्-दर्शन है। इसे ही शुद्ध-सम्यक्-दर्शन मान लेना भारी भूल है। शास्त्रों में कही गई या गुरुओं और विद्वानों द्वारा उपदेशित जानकारी पराश्रित होती है। पुद्गल आत्मा से कैसे मिलता है इसकी स्वयं की अनुभूतियां जानकारी करना या हो जाना ही सही शुद्ध-सम्यक्-दर्शन और सम्यक्-ज्ञान है। लोग इस शुद्ध ज्ञान दर्शन को इसलिए नहीं पाते कि वे व्यवहार तथा श्रुत दर्शन ज्ञान को पाकर ही संतुष्ट हो जाते हैं या उसी में भूले रहते हैं।

शास्त्रों में कहा गया है कि 'योग' (मन, वचन, काय के हलन चलन) द्वारा पुद्गल आते हैं और मिथ्यात्व, अविरति, प्रमाद, विषय एवं 'कषाय' (क्रोध, मान, माया, लोभ) के कारण आत्मा में सट (बंध) जाते हैं। पर आत्मा तो अरूपी, अदृश्य, अस्पृष्य है उसमें पुद्गल कैसे सटता तथा बन्ध करता है—इस पर कभी कोई विचार नहीं करता। अतः ऐसा ज्ञान या दर्शन श्रुतमात्र ही रहता है शुद्ध नहीं होता। स्वयं की अनुभूति हुए बिना ऐसी मान्यता व्यवहार ही है। इससे मोक्ष या सही मोक्षमार्ग में प्रवेश नहीं मिल सकता।

षट्द्रव्यों का ज्ञान होना तो आवश्यक ही है। ये सभी स्वतंत्र द्रव्य हैं। कोई भी एक-दूसरे में नहीं मिलता न परिणत होता है। आत्मा और पुद्गल साथ-साथ—एक में एक घुल-मिलकर रहते हुए भी अपना-अपना स्वतन्त्र अस्तित्व रखते हैं। आत्मा क्या है इसकी कुछ जानकारी शास्त्रों या ज्ञानी गुरुओं के उपदेश से हो सकती है। अरूपी-अशरीरी आत्मा को कर्म पुद्गल कैसे बांध लेते हैं—कैसे सट जाते हैं यह एक कठिन समस्या है जिसका समाधान किसी शास्त्र में नहीं मिलता। आत्मा और पुद्गल का सम्बन्ध एक वैज्ञानिक तथ्य है। परम्परा से चली आई यह गुत्थी आधुनिक विज्ञान द्वारा ही सुलझाई जा सकती है। इसका ज्ञान गुरुओं-पण्डितों में नहीं होने से आत्मा और कर्मों के सम्बन्ध का ज्ञान अधूरा ही रह जाता है। न तो शुद्ध-सम्यक्-दर्शन ही होता है न शुद्ध-सम्यक्-ज्ञान ही। फिर लोग अपने को रत्नत्रय का धारी समझ बैठते हैं जो महान् भूल है। ऐसे लोग कितना भी तप करें मोक्षमार्ग के पथिक नहीं हो सकते।

सम्यक् ज्ञान का अर्थ है किसी विषय या वस्तु के विषय में, वैज्ञानिक एवं पूर्ण विधिवत् ज्ञान, जैसे— किसी ने अंगूर न खाए हों केवल सुन-सुनाकर या पुस्तकों में पढ़कर अंगूरों के विषय में जानकारी पा ली हो तो उसे शुद्ध सच्चा, सही ज्ञान नहीं कह सकते। जब वह व्यक्ति विभिन्न प्रकार के अंगूरों को देख ले और स्वयं चख भी ले, खा ले, तभी उसका अंगूर-विषयक ज्ञान अंगूर का सम्यक् ज्ञान कहा जा सकता है। उसे यह भी जानना जरूरी है कि अंगूर कैसे, कहां, कैसा होता या पैदा होता है। उसकी पैदावार के लिए क्या-क्या जरूरतें होती हैं, इत्यादि। यह सब पूरी तरह जान लेने और स्वयं स्वाद ले लेने के उपरान्त ही पूर्ण ज्ञान या शुद्ध ज्ञान या सम्यक् ज्ञान अंगूर के विषय का कहा जा सकता है। अन्यथा तो ज्ञान अधूरा ही कहा जाएगा। इसी प्रकार की कुछ बात आत्मा के साथ भी है। आत्मा और कर्म पुद्गल कैसे बंधते छूटते हैं इसकी स्वयं की अनुभूति जब तक नहीं होती ज्ञान श्रुत-ज्ञान ही रहेगा और 'व्यवहार' का ही भाग रहेगा—'निश्चय' नहीं हो सकता।

जैन सिद्धान्त का 'पुद्गल' ही वर्तमान विज्ञान का इलैक्ट्रोन, प्रोटोन, न्यूट्रोन आदि है। चूंकि इनके प्राथमिक संघ को 'परमाणु' कहा जाता है। इससे मैंने 'पुद्गल' (इलैक्ट्रोन, प्रोटोन आदि) को 'परम-परमाणु' की संज्ञा दी है। इन परम-परमाणुओं, परमाणुओं आदि से सारा वातावरण भरा हुआ है और किसी भी जीवधारी का शरीर इन पुद्गलों से ही निर्मित है। हम जो भी खाते-पीते, स्वांस लेते आदि हैं वे सब पुद्गलों के संघ ही हैं। सारा दृश्य जगत् पुद्गल-निर्मित है। जीवधारियों में उनका शरीर भी पुद्गल निर्मित ही है। पुद्गल अजीव या अज्ञान, जड़ है। शरीर में चेतन आत्मा की विद्यमानता से ही सारा कार्य हो पाता है। दुःख-सुख की अनुभूति भी होती है। बिजली के

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विभिन्न यन्त्रों एवं उपकरणों में जब तक बिजली प्रवाहित नहीं होती ये यन्त्र और उपकरण कुछ नहीं करते, परन्तु उनमें विद्युत् आते ही ये अपनी-अपनी संरचना या बनावट के अनुसार काम करने लगते हैं। बिजली हटाते ही पुनः चुप, बेकार हो जाते हैं। उसी प्रकार आत्मा की मौजूदगी में शरीरधारी अपने-अपने शरीर की संरचना एवं बनावट के अनुसार काम करते हैं। आत्मा के चले जाने पर वे जड़ हो जाते हैं उन्हें मरा हुआ कहा जाता है। आत्मा स्वयं कुछ नहीं करता, सब कुछ शरीर यन्त्र ही करता है। पर अकेला जड़ शरीर भी कुछ नहीं कर सकता पर चेतन आत्मा की विद्यमानता में सारा शरीर एवं सभी इन्द्रियां कार्यशील रहती हैं और दुःख, सुख, आनन्द आदि की अनुभूति भी होती है। आत्मा न हो तो कोई अनुभूति न हो। इसीलिए यह कहते हैं कि आत्मा ही दुःख-सुख अनुभव करता है एवं कर्त्ता और भोक्ता है।

आत्मा भावकर्म, द्रव्यकर्म तथा नोकर्मरूप पुद्गलपिंड से बद्ध होने के कारण जड़ व अचेतन शरीर के संसर्ग से स्वयं को रूपी मानता है और उसके साथ परिभ्रमण करता रहता है।

आत्मा का स्वरूप निर्विकार, नित्यानन्द, स्वसमयसार रूप अमूर्तिक है। वह चक्षुरादि बाह्येन्द्रियगम्य नहीं, अपितु ज्ञानगम्य है। अपने वास्तविक स्वरूप का बोध न होने के कारण वह अवास्तविक बाह्य शरीरादि को निजस्वरूप मान लेता है। यदि वह सात तत्त्व, नौ पदार्थ, छः द्रव्य तथा पांच अस्तिकायादि के बोध द्वारा स्वनिरीक्षक बन जाए, तो उसे अपनी वास्तविकता का पता चलेगा जिसके द्वारा वह अन्त तक अविनाशी फल को देकर अनन्तकाल-पर्यन्त सुख प्राप्त कर सकता है। यह आत्मा इस सम्पूर्ण शरीर में व्याप्त है। कहा भी है—

अरविंदी क्षिसलनकुमात्मनिखं देहं बोलीकण्णे तां।
गुरियागं शिलेयोळ्सुवर्णमरलोळ्सौरम्यमाक्षीरदोल् ॥
नरुनेय्काष्ठदोळग्नियिर्पतेरदिंदीमेय्योळीर्दिपनें।
दरिदभ्यासिसे काण्गुमेंदरुपिदै ! रत्नाकराधीश्वरा ॥४॥

वास्तविक, अमूर्त्तिक, नित्य-निरंजन आत्मस्वरूप बाह्य चर्मदृष्टि द्वारा दृष्टिगोचर नहीं होता, अपितु आत्मानन्द-स्थितिज्ञानरूपी चक्षु द्वारा दृष्टिगोचर होता है। यह आत्मा शरीर में सर्वांगरूप से व्याप्त है, अतएव व्यवहार और निश्चय धर्म के द्वारा उसका मन्थन करने से अपने आप में ही शुद्धात्मा की प्राप्ति हो जाएगी।

अपि च, सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान तथा सम्यक्चारित्र रूपी रत्नत्रय से बाह्येन्द्रियवासना के आवरण को हटाकर आत्मा शीघ्र सुवर्ण के समान शुद्ध निर्मल केवलज्ञान रूप बनकर मोक्ष को प्राप्त हो जाता है।

(आचार्यरत्न श्री देशभूषण जी महाराज कृत उपदेशसारसंग्रह, भाग ४, दिल्ली, वी० नि० सं० २४८४ से)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org